मैं स्वामी दयानन्द सरस्वती संक्षेप से अपना जन्मचरित्र लिखता हूँ

संवत् 1881 के वर्ष में मेरा जन्म दक्षिण गुजरात प्रान्त देश काठियावाड़ का मजोकठा देश मोर्वी का राज्य औदीच्य ब्राह्मण के घर में हुआ था,यहाँ अपना पिता का निज निवास स्थान के प्रसिद्ध नाम इसलिये मैं नहीं लिखता कि जो माता-पिता आदि जीते हों मेरे पास आवें तो इस सुधार के काम में विघ्न हो क्योंकि मुझको उनकी सेवा करना उनके साथ घूमने में श्रम और ध न आदि का व्यय कराना नहीं चाहता। मैंनें पाँचवें वर्ष में देवनागरी अक्षर पढ़ने का आरम्भ किया था। और मुझको कुल की रीति की शिक्षा भी माता पिता आदि किया करते थे, बहुत से धर्मशास्त्रादि के श्लोक और सूत्रादि भी कण्ठस्थ कराया करते थे। फिर आठवें वर्ष में मेरा यज्ञोपवीत कराके गायत्री संध्या और उसकी क्रिया भी सिखा दी गई थी। और मुझको यजुर्वेद की संहिता का आरम्भ कराके उसमें से प्रथम रुद्राध्याय पढ़ाया गया था, और मेरे कुल में शैव मत था उसी की शिक्षा भी किया करते थे। और पिता आदि लोग यह भी कहा करते थे कि पार्थिव पूजन अर्थात् मिट्‌टी का लिंग बनाके तू पूजा कर। और माता मने किया करती थी कि यह प्रातः काल भोजन कर लेता है इससे पूजा नहीं हो सकेगी प्रि कुल की रीति है। तथा कुछ-कुछ व्याकरण का विषय और वेदों का पाठ मात्र भी मुझको पढ़ाया करते थे। पिताजी अपने साथ मुझको जहाँ तहाँ मन्दिर और मेल मिलापों में ले जाया करते और यह भी कहा करते थे कि शिव की उपासना सबसे श्रेष्ठ है। इस प्रकार 14 चौदहवें वर्ष की अवस्था के आरम्भ तक यजुर्वेद की संहिता सम्पूर्ण और कुछ अन्य वेदों का भी पाठ पूरा हो गया था। और शब्द रूपावली आदि छोटे-छोटे व्याकरण के ग्रन्थ भी पूरे हो गये थे। पिताजी जहाँ-जहाँ शिव पुराण आदि की कथा होती थी वहाँ मुझको पास बैठा कर सुनाया करते थे। और घर में भिक्षा की जीविका नहीं थी किन्तु जमीदार और लेन -देन से जीविका के प्रबन्ध करके सब काम

चलाते थे। और मेरे पिता ने माता के मने करने पर भी पार्थिव पूजन का आरम्भ करा दिया था। जब शिवरात्रि आई तब 13 त्रयोदशी के दिन कथा का माहात्म्य सुना के शिवरात्रि के व्रत करने का निश्चय करा दिया। परन्तु माता ने मने भी किया कि इससे व्रत नहीं रहा जायगा तथापि पिताजी ने व्रत का आरम्भ करा दिया। और जब 14 चतुर्दशी की साम हुई तब बड़े-बड़े वस्ती के रईस अपने पुत्रों के सहित मन्दिरों में जागरण करने को गये वहाँ मैं भी अपने पिता के साथ गया और प्रथम प्रहर की पूजा भी करी दूसरे प्रहर की पूजा करके पुजारी लोग बाहर निकलके सो गये। मैंने प्रथम से सुन रखा था कि सोने से शिवरात्रि का फल नहीं होता है। इसलिये अपनी आँखों में जल के छींटे मार के जागता रहा और पिता भी सो गये तब मुझको शंका हुई कि जिसकी मैंने कथा सुनी थी वही यह महादेव है वा अन्य कोई क्योंकि वह तो मनुष्य के माफक एक देवता है। वह बैल पर चढ़ता , चलता फिरता, खाता पीता त्रिशूल हाथ में रखता डमरू बजाता वर और शाप देता और कैलाश का मालिक है इत्यादि प्रकार का महादेव कथा में सुना था, तब पिता जी को जगा के मैंने पूछा कि यह कथा का महादेव है वा कोई दूसरा तब पिता ने कहा कि क्यों पूछता है। तब मैंने कहा कि कथा का महादेव तो चेतन है वह अपने ऊपर चूहों को क्यों चढ़ने देगा और इसके ऊपर तो चूहे फिरते हैं तब पिताजी ने कहा कि कैलाश पर जो महादेव रहते हैं उनकी मूर्ति बना और आवाहन करके पूजा किया करते हैं अब कलियुग में उस शिव का साक्षात् दर्शन नहीं होता। इसलिये पाषाणादि की मूर्ति बना के उन महादेव की भावना रखकर पूजन करने से कैलाश का महादेव प्रसन्न हो जाता है। ऐसा सुन के मेरे मन में भ्रम हो गया कि इसमें कुछ गड़बड़ अवश्य है। और भूख भी बहुत लग रही थी पिता से पूछा कि मैं घर को जाता हूँ। तब उन्होंने कहा कि सिपाही को साथ लेके चला जा परन्तु भोजन कदाचित् मत करना। मैंने घर में जाकर माता से कहा कि मुझको भूख लगी है। माता ने कुछ मिठाई आदि दिया उसको खाकर 1 एक बजे पर सो गया । पिताजी प्रातःकाल रात्रि के भोजन को सुनके बहुत गुस्से

हुये कि तैंने बहुत बुरा काम किया। तब मैंने पिता से कहा कि यह कथा का महादेव नहीं है इसकी पूजा मैं क्यों करूँ। मन में तो श्रद्धा नहीं रही, परन्तु ऊपर के मन पिताजी से कहा कि मुझको पढ़ने से अवकाश नहीं मिलता कि मैं पूजा कर सकूँ। तथा माता और चाचा आदि ने भी पिता को समझाया इस कारण पिता भी शान्त हो गये कि अच्छी बात है पढ़ने दो। फिर निघण्टु निरुक्त और पूर्व मीमांसा आदि शास्त्रों के पढ़ने की इच्छा करके आरम्भ करके पढ़ता रहा और कर्मकाण्ड विषय भी पढ़ता रहा। मुझसे छोटी 1 बहन फिर उससे छोटा एक भाई फिर भी एक बहन और एक भाई अर्थात् दो बहन और दो भाई और हुये थे तब तक मेरी 16 वर्ष की अवस्था हुई थी। पीछे मुझसे छोटी 14 की जो बहन थी उसको हैजा हुआ एक रात्रि में कि जिस समय नाच हो रहा था। नौकर ने खबर दी कि उसको हैजा हुआ है। तब सब जने वहाँ से तत्काल आए और वैद्य आदि बुलाये औषधि भी की तथापि चार घण्टे में उस बहन का शरीर छूट गया सब लोग रोने लगे। परन्तु मेरे हृदय में ऐसा धक्का लगा और भय हुआ कि ऐसे ही मैं भी मर जाऊँगा सोच विचार में पड़ गया। जितने जीव संसार में हैं उनमें से एक भी न बचेगा। इससे कुछ ऐसा उपाय करना चाहिए कि जिससे यह दुःख छूटे और मुक्ति हो अर्थात् इसी समय से मेरे चित्त में वैराग्य की जड़ पड़ गई। परन्तु यह विचार अपने मन में ही रखा किसी से कुछ भी न कहा। इतने में 19 वर्ष की जब अवस्था हुई तब जो मुझसे अति प्रेम करने वाले बड़े धर्मात्मा विद्वान् मेरे चाचा थे उनकी मृत्यु होने से अत्यन्त वैराग्य हुआ कि संसार में कुछ भी नहीं परन्तु यह बात माता पिता से तो नहीं कही किन्तु अपने मित्रों से कहा कि मेरा मन गृहाश्रम करना नहीं चाहता। उन्होंने माता पिता से कहा माता-पिता ने विचारा कि इसका विवाह शीघ्र कर देना चाहिये। जब मुझको मालूम पड़ा कि ये 20 बीसवें वर्ष में ही विवाह कर देंगे तब मित्रों से कहा कि मेरे माता-पिता को समझा दो अभी विवाह न करें। तब उन्होंने एक वर्ष जैसे-तैसे विवाह रोका तब तक 20 बीसवाँ वर्ष पूरा हो गया। तब मैंने पिताजी से कहा कि मुझे काशी में भेज दीजिये कि मैं व्याकरण ज्योतिष और

वैद्यक आदि ग्रन्थ पढ़ आऊँ। तब माता-पिता और कुटुम्ब के लोगों ने कहा कि हम काशी को कभी नहीं भेजेंगे जो कुछ पढ़ना हो सो यही पढ़ो। और अगली साल में तेरा विवाह भी होगा क्योंकि लड़की वाला नहीं मानता । और हमको अधिक पढ़ा के क्या करना है जितना पढ़ा है वही बहुत है। फिर मैंने पिता आदि से कहा कि मैं पढ़कर आऊँ तब विवाह होना ठीक है तब माता भी विपरीत हो गई कि हम कहीं नहीं भेजते और अभी विवाह करेंगे। तब मैंने चाहा कि अब सामने रहना अच्छा नहीं है। फिर 3 कोश ग्राम में अपनी जिमीदारी थी वहाँ एक अच्छा पण्डित था माता-पिता की आज्ञा लेके वहाँ जाकर उस पण्डित के पास मैं पढ़ने लगा। और वहाँ के लोगों से भी कहा कि मैं गृहाश्रम करना नहीं चाहता। फिर माता-पिता ने मुझे बुला के विवाह की तैयारी कर दी तब तक 21 इक्कीसवाँ वर्ष भी पूरा हो गया। जब मैंने निश्चित् जाना कि अब विवाह किये बिना कदाचित् न छोड़ेंगे। फिर गुपचुप संवत् 1903 के वर्ष घर छोड़ कर संध्या के समय भाग उठा चार कोश पर एक ग्राम था वहाँ जाकर रात्रि को ठहर कर दूसरे दिन प्रहर रात्रि से उठ के 15 कोश चला परन्तु प्रसिद्ध ग्राम सड़क और जानकारों के ग्रामों को छोड़ के बीच-बीच में नित्य चलने का प्रारम्भ किया। तीसरे दिन मैंने किसी राजपुरुष से सुना कि फलाने का लड़का घर छोड़ कर चला गया है उसको खोजने के लिये सवार और पैदल आदमी यहाँ तक आये थे। जो मेरे पास थोड़े से रुपये और अंगूठी आदि भूषण था वह सब पोपों ने ठग लिया। मुझसे कहा कि तुम पक्के वैराग्यवान् तब होंगे कि जब पास की चीज सब पुण्य कर दो फिर उन लोगों के कहने से मैंने जो कुछ था सब दे दिया । फिर लाला भगत की जगह जो कि सायले शहर में है वहाँ बहुत साधुओं को सुन कर चला गया वहाँ एक ब्रह्मचारी मिला उसने मुझसे कहा तुम नैष्ठिक ब्रह्मचारी हो जाओ उसने मुझको ब्रह्मचारी की दीक्षा दी और शुद्ध चैतन्य मेरा नाम रखा तथा काषाय वस्त्र भी करा दिये। जब मैं वहाँ से अहमदाबाद के पास कौठ गांगड़ जोकि छोटा सा राज्य है वहाँ आया तब मेरे ग्राम के पास का जान पहचान वाला एक वैरागी

मिला उसने पूछा कि तुम कहाँ से आये और कहाँ जाना चाहते हो। तब मैंने उससे कहा कि घर से आया और कुछ देश भ्रमण किया चाहता हूँ। उसने कहा कि तुमने काषाय वस्त्र धारण करके क्या घर छोड़ दिया। मैंने कहा कि हाँ मैंने घर छोड़ दिया और कार्तिकी के मेले पर सिद्धपुर को जाऊँगा। फिर मैं वहाँ से चल कर सिद्धपुर में आके नीलकण्ठ महादेव की जगह में ठहरा कि जहाँ दण्डी स्वामी और ब्रह्मचारी ठहर रहे थे। उनका सत्संग और जो-जो कोई महात्मा वा पण्डित मेले में सुन पड़ा उन सबके पास गया और उनसे सत्संग किया। जो मुझको कौठ गांगड़ में वैरागी मिला था उसने फिर मेरे पिता के पास पत्र भेजा कि तुम्हारा पुत्र ब्रह्मचारी हुआ काषाय वस्त्र धारण किये मुझको मिला और कार्तिकी के मेले में सिद्धपुर को गया। ऐसा सुन के सिपाहियों के सहित पिताजी सिद्धपुर में आकर मेले में खोज कर पता लगाके जहाँ पण्डितों के बीच में मैं बैठा वहाँ पहुँच कर मुझसे बोले कि तू हमारे कुल में कलंक लगाने वाला पैदा हुआ। जब मैंने पिताजी की ओर देख के उठ के चरण स्पर्श किया नमस्कार करके बोला कि आप क्रोधित मत हूजिये मैं किसी आदमी के बहकाने से चला आया और मैंने बहुत सा दु:ख पाया। अब मैं घर को आने वाला था। परन्तु अब आप आये यह बहुत अच्छा हुआ कि अब मैं साथ-साथ घर को चलूँगा । तो भी क्रोध के मारे मेरे गेरु के रंगे वस्त्र और एक तूंबे को तोड़ फार के फेंक दिये और वहाँ भी बहुत कठिन -कठिन बातें कह कर बोले कि तूँ अपनी माता की हत्या लिया चाहता है। मैंने कहा कि मैं अब घर को चलूँगा। तो भी मेरे साथ-साथ सिपाही कर दिये कि क्षण भर भी इसको अकेला मत छोड़ो और इस पर रात्रि को भी पहरा रखो। परन्तु मैं भागने का उपाय देख रहा था। सो जब तीसरी रात के तीन बजे के पीछे पहरे वाला बैठा-बैठा सो गया उसी समय मैं लघुशंका का बहाना करके भागा। आधा कोश पर एक मन्दिर के शिखर में एक वृक्ष के सहारे से चढ़ और जल का लोटा भर के छिप कर बैठ रहा जब चार बजे का अमल हुआ तब मैंने उन्हीं सिपाहियों में से एक सिपाही मालियों से मुझको पूछता सुना तब मैं और भी

छिप गया ऊपर बैठा सुनता रहा वे लोग ढूँढ कर चले गये मैं उसी मन्दिर की शिखर में दिन भर रहा। जब अन्धेरा हुआ तब उस पर से उतर सड़क को छोड़ के किसी से पूछा के दो कोश पर एक ग्राम था उसमें ठहर के अहमदाबाद होता हुआ बड़ोदरे शहर में आकर ठहरा वहाँ चेतन मठ में ब्रह्मानन्द आदि ब्रह्मचारी और संन्यासियों से वेदान्त विषय की बहुत बातें की। और मैं ब्रह्म हूँ अर्थात् जीव ब्रह्म एक है ऐसा निश्चय उन ब्रह्मानन्दादि ने मुझको करा दिया प्रथम वेदान्त पढ़ते समय भी कुछ कुछ निश्चय हो गया था परन्तु ठीक दृढ़ हो गया कि मैं ब्रह्म हूँ। फिर वही बड़ोदे में एक बनारसी बाई वैरागी का स्थान सुनकर उसमें जाके एक सच्चिदानन्द परमहंस से भेंट करके अनेक प्रकार की शास्त्र विषयक बातें हुई फिर वहाँ सुना कि आजकल चाणोद कन्याली में बड़े-बड़े संन्यासी ब्रह्मचारी और विद्वान् ब्राह्मण रहते हैं। वहाँ जाके दीक्षित और चिदाश्रमादि स्वामी ब्रह्मचारी और पण्डितों से अनेक विषयों का परस्पर संभाषण हुआ। फिर एक परमान्द परमहंस से वेदान्तसार आर्या हरिमीड़े तोटक वेदान्त परिभाषा आदि प्रकरणों का थोड़े महिनों में विचार कर लिया। उस समय ब्रह्मचर्यावस्था में कभी-कभी अपने हाथ से रसोई बनाने पड़ती थी इस कारण पढ़ने में विघ्न विचार के चाहा कि अब संन्यास लेना अच्छा है। फिर एक दक्षिणी पण्डित के द्वारा वहाँ जो दीक्षित स्वामी विद्वान् थे उनको कहलाया कि आप उस ब्रह्मचारी को संन्यास की दीक्षा दे दीजिये। क्योंकि मैं अपना ब्रह्मचारी का नाम भी बहुत प्रसिद्ध करना नहीं चाहता था। क्योंकि घर का भय बड़ा था जो कि अब तक बना है। तब उन्होंने कहा कि उसकी अवस्था कम है इसलिये हम नहीं देते । इसके अनन्तर दो महीने के पीछे दक्षिण से एक दण्डी स्वामी और एक ब्रह्मचारी आके चाणोद से कुछ कम कोश भर मकान जो कि जंगल में था उसमें ठहरे उनको सुनकर एक दक्षिणी वेदान्ति पण्डित और मैं दोनों उनके पास जाके शास्त्र विषयक सम्भाषण करने से मालूम हुआ कि अच्छे विद्वान् हैं। और वे शृंगीरी मठ की ओर से आके द्वारिका की ओर को जाते थे उनका नाम पूर्णानन्द सरस्वती था। उनसे उस वेदान्ति के द्वारा

कहलाया कि ये ब्रह्मचारी विद्या पढ़ना चाहते हैं। यह मैं ठीक जानता हूँ कि किसी प्रकार का अवगुण इनमें नहीं है इनको आप संन्यास दे दीजिये संन्यास लेने का इनका प्रयोजन यही है कि निर्विघ्न विद्या का अभ्यास कर सकें। तब उन्होंने कहा कि किसी गुजराती स्वामी से कहो क्योंकि हम तो महाराष्ट्र के हैं। तब उसने कहा कि दक्षिणी स्वामी गौड़ों को भी संन्यास देते हैं तो यह ब्रह्मचारी तो पंच द्राविड़ है इसमें क्या चिन्ता है। तब उन्होंने मान लिया और उसी ठिकाने तीसरे दिन संन्यास की दीक्षा दण्ड ग्रहण कराया और दयानन्द सरस्वती नाम रखा। परन्तु मैंने दण्ड का विसर्जन भी उन्हीं स्वामी जी के सामने कर दिया क्योंकि दण्ड की भी बहुत सी क्रिया है कि जिससे पढ़ने में विघ्न हो सकता था। फिर वे स्वामी जी द्वारिका की ओर चले गये। मैं कुछ दिन चाणोद कन्याली में रह के व्यासाश्रम में एक योगानन्द स्वामी को सुना कि वे योगाभ्यास में अच्छे है उनके पास जाके योगाभ्यास की क्रिया सीख के एक कृष्ण शास्त्री छिनौर शहर के बाहर रहते थे उनको सुनके व्याकरण पढ़ने के लिये उनके पास गया और कुछ व्याकरण का अभ्यास करके फिर चाणोद में आकर ठहरा वहाँ दो योगी मिले कि जिनका नाम ज्वालानन्दपुरी और शिवानन्द गिरि था। उनसे भी योगाभ्यास की बातें हुई और उन्होंने कहा कि तुम अहमदाबाद में आओ वहाँ हम नदी के ऊपर दूधेश्वर महादेव में ठहरेंगे। वहाँ आवेंगे तो योगाभ्यास की रीति सिखलावेंगे। वहाँ से वे अहमदाबाद को चले गये फिर एक महीने के पीछे मैं भी अहमदाबाद में जाके उनसे मिला और योगाभ्यास की रीति सीखी। फिर आबूराज पर्वत में योगियों को सुनके वहाँ जाके अर्वदा भवानी आदि स्थानों में भवानीगिरि आदि योगियों से मिल के कुछ और योगाभ्यास की रीति सीख के संवत् 1911 के वर्ष के अन्त में हरिद्वार के कुम्भ के मेले में आके बहुत साधु संन्यासियों से मिला और जब तक मेला रहा तब तक चण्डी के पहाड़ के जंगल में योगाभ्यास करता रहा। जब मेला हो चुका तब हृषीकेश में जाके संन्यासियों और योगियों से योग की रीति सीखता और सत्संग करता रहा। इसके आगे फिर लिखेंगे –

दयानन्द सरस्वती

फिर वहाँ से एक ब्रह्मचारी और दो पहाड़ी साधु मेरे साथ आये हम सब जने टिहरी में आए वहाँ बहुत साधु और राजपण्डितों से समागम हुआ। वहाँ एक पण्डित ने एक दिन मुझे और ब्रह्मचारी को अपने घर में भोजन करने के लिये निमन्त्रण दिया। समय पर उसका एक मनुष्य बुलाने को आया। तब मैं और ब्रह्मचारी उसके घर भोजन करने को गये। जब उसके घर के द्वार में घुस करके देखा तो एक ब्राह्मण माँस को काटता था। उसको देखकर जब भीतर गये तब बहुत से पण्डितों को एक सिमियाने के भीतर बैठे देखे और वहाँ बकरे का माँस, चमड़ा और शिर देख के पीछे लौटे। पण्डित देख के बोला कि आइये। तब मैंने उत्तर दिया कि आप अपना काम कीजिये। हम बाहर जाते है। ऐसा कह कर अपने स्थान चले आये। तब पण्डित भी हमको बुलाने आया। उनसे मैंने कहा कि तुम सूखा अन्न भेज दो हमारा ब्रह्मचारी बना लेगा। पण्डित बोले कि आपके लिये तो सब पदार्थ बनाये हैं। मैंने उनसे कहा कि आपके घर में मुझ से भोजन कदापि न किया जावेगा। क्योंकि आप लोग माँसाहारी हैं। और मुझको देखने से घृणा आती है। फिर पण्डित ने अन्न भेज दिया। पीछे वहाँ कुछ दिन ठहर कर पण्डितों से पूछा कि इस पहाड़ देश में कौन-कौन शास्त्र के ग्रन्थ देखने को मिलते हैं। मैं देखना चाहता हूँ। तब उन्होंने कहा कि व्याकरण ,काव्य,कोष,ज्योतिष और तन्त्र ग्रन्थ बहुत मिलते हैं। तब मैंने कहा कि और ग्रन्थ तो मैंने देखे हैं परन्तु तन्त्र ग्रन्थ को देखना चाहता हूँ। तब उन्होंने छोटे बड़े ग्रन्थ मुझको दिये। मैंने देखे तो बहुत भ्रष्टाचार की बातें उनमें देखी कि माता, कन्या, भगिनी, चमारी, चांडाली आदि से संगम करना, नग्न करके पूजना। मद्य,मांस,मच्छी,मुद्रा अर्थात् ब्राह्मण से लेके चांडाल पर्यन्त एकत्र भोजन करना और उक्त स्त्रियों से मैथुन करना इन पाँच मकरों से मुद्रिका होना आदि लेख उनमें देख के चित्त को खेद हुआ कि जिनने ये ग्रन्थ बनाये हैं वे कैसे नष्टबुद्धि थे। फिर वहाँ से श्रीनगर को जाके केदारघाट पर मन्दिर में ठहरे और वहाँ भी तन्त्रग्रन्थों का देखना और पण्डितों से इस विषय में संवाद होता

रहा। इतने में एक गंगागिरि साधु जो कि पहाड़ में ही रहता था। उससे भेंट हुई और योग विषय में कुछ बातचीत होने से विदित हुआ कि यह साधु अच्छा है। कई बार उससे बातें हुईं। मैंने उससे पूछा उसने उत्तर दिया उसने मुझसे पूछा उसका उत्तर मैंने दिया। दोनों प्रसन्न होकर दो महीने तक वहाँ रहे । जब वर्षा ऋतु आई तब आगे रूद्र प्रयागादि देखता हुआ अगस्त मुनि के स्थान पर पहुँच कर उसके उत्तर पहाड़ पर एक शिवपुरी स्थान है वहाँ जाकर चार महीने निवास करके पीछे उन साधु और ब्रह्मचारी को वहाँ छोड़ के अकेला केदार की ओर चलता हुआ गुप्त काशी में पहुँचा । वहाँ कुछ दिन रहकर वहाँ से आगे चल के त्रियुगीनारायण का स्थान और गौरीकुण्ड देखता हुआ भीम गुफा देखकर थोड़े ही दिनों में केदार में पहुँच कर निवास किया। वहाँ कई एक साध ु पण्डे और केदार के पुजारी जंगम मत के थे उनसे समागम हुआ तब तक पाँच छः दिन के पीछे वे साधु और ब्रह्मचारी भी वहाँ आ गये। वहाँ का सब चरित्र देखा। फिर इच्छा हुई कि इन बर्फ के पहाड़ों में भी कुछ घूम के देखें कि कोई साधु महात्मा रहता है वा नहीं परन्तु मार्ग कठिन और उन पहाड़ों में अतिशीत भी है। वहाँ के निवासियों से भी पूछा कि इन पहाड़ों में कोई साधु महात्मा रहता है वा नहीं। उन्होंने कहा कि कोई नहीं। वहाँ 20 बीस दिन रहकर पीछे को अकेला ही लौटा क्योंकि वह ब्रह्मचारी और साधु दो दिन रहकर शीत से घबराह के प्रथम ही चले गये थे । फिर मैं वहाँ से चल के तुंगनाथ के पहाड़ पर चढ़ गया। उसका मन्दिर पुजारी बहुत सी मूर्ति आदि की सब लीला को देख कर तीसरे पहर वहाँ नीचे को उतरा। बीच में से दो मार्ग थे एक पश्चिम को और एक पश्चिम और दक्षिण के बीच को जाता था जो जंगली मार्ग था मैं उसमें चढ़ गया। आगे दूर जाकर देखा तो जंगल पहाड़ और बहुत गहरा सूखा नाला है उसमें मार्ग बन्द हो रहा है। विचारा कि जो पहाड़ पर चढ़े तो रात हो जावेगा पहाड़ का मार्ग कठिन है वहाँ पहुँच नहीं सकता। ऐसा विचार उस नाले में बड़ी कठिनता से घास और वृक्षों को पकड़-पकड़ नीचे उतर कर नाले के किनारे पर चढ़ कर देखा तो पहाड़ और जंगल है कहीं भी मार्ग नहीं । तब तक सूर्य अस्त होने को आया विचारा कि जो रात हो जावेगी तो यहाँ जल अग्नि कुछ भी नहीं है फिर क्या करेंगे ऐसा विचार कर आगे को बढ़ा

जंगल में चलते अनेक ठोकर और कांटे लगे शरीर के वस्त्र भी फट गये। बड़ी कठिनता से पहाड़ के पार उतरा तब सड़क मिला। और अन्धेरा भी हो गया। फिर सड़क-सड़क चलके एक स्थान मिला वही के लोगों से पूछा कि यह कहाँ की सड़क है कहा कि ओखी मठ का। फिर वहाँ रात्रि को रह कर क्रम से गुप्त काशी आया वहाँ थोडा ठहर कर ओखी मठ में जाकर उसमें ठहर के देखा तो बड़ी भारी पोप लीला बड़े भारी कारखाने। वहाँ के महान्त ने कहा कि तुम हमारे चेले हो जाओ यहाँ रहो, लाखों के कारखाने तुम्हारे हाथ हो जावेंगे मेरे पीछे तुम्ही महान्त होंगे। मैंने उनको उत्तर दिया कि सुनो ऐसी मेरी इच्छा होती तो अपने माता-पिता, बन्धु, कुटुम्ब और घर आदि ही क्यों छोड़ता क्या तुम्हारा स्थान और तुम उनसे भी अधिक हो सकते हो। मैंने जिस लिये सब छोड़ा हैं वह तुम्हारे पास किंचिन्मात्र भी नहीं है उनने पूछा कि कह क्या बात है। मैंने उत्तर दिया कि सत्य विद्या, योग, मुद्रि और अपने आत्मा की पवित्रता आदि गुणों से धर्मात्मता पूर्वक उन्नति करना है। तब महान्त ने कहा कि अच्छा तुम कुछ दिन यहाँ रहो। मैंने उनको कुछ उत्तर न दिया और प्रातःकाल उठके मार्ग में चल के जोशी मठ को पहुँच के वहाँ के दक्षिणी शास्त्री और संन्यासी थे उनसे मिल कर वहाँ ठहरा ।

दयानन्द सरस्वती

और बहुत से योगियों और विद्वान् महन्तों और साधुओं से भेंट हुई और उनसे वार्तालाप में मुझको योग विद्या सम्बन्धी और बहुत नई बातें ज्ञात हुई ।

उनसे पृथक् होकर पुनः मैं बद्रीनारायण को गया। विद्वान् रावल जी उस समय उस मन्दिर का मुख्य महन्त था। और मैं उसके साथ कई दिन तक रहा। हम दोनों का परस्पर वेदों और दर्शनों पर बहुत वाद विवाद रहा। जब उनसे मैंने पूछा कि इस परिस्थिति में कोई विद्वान् और सच्चा योगी भी है या नहीं, तो उसने यह जताने में बड़ा शोक प्रकट किया कि इस समय इस परिस्थति में कोई ऐसा योगी नहीं है। परन्तु उसने बताया कि मैंने सुना है कि प्रायः ऐसे योगी इस मन्दिर के देखने के लिये आया करते हैं। उस समय मैंने यह दृढ़ संकल्प कर लिया कि समस्त देशों में और विशेषतः पर्वतीय स्थलों में अवश्य ऐसे पुरुषों का अन्वेषण करूँगा। एक दिन सूर्योदय के होते ही मैं अपनी यात्रा पर चल पड़ा और पर्वत की उपत्यका में होता हुआ अलखनन्दा नदी के तट पर

जा पहुँचा। मेरे मन में उस नदी के पार करने की किंचित् इच्छा न थी। क्योंकि मैंने उस नदी के दूसरी ओर एक बड़ा ग्राम माना नामक देखा, अतः अभी उस पर्वत की उपत्यका में ही अपनी गति रख कर नदी के वेग के साथ-साथ मैं जंगल की ओर हो लिया । पर्वत ,मार्ग और टीले आदि सब हिम के वस्त्र पहने हुये थे। और बहुत घनी हिम उनके ऊपर थी। अतः अलखनन्दा नदी के स्रोत तक पहुँचने में मुझको अत्यन्त कष्ट उठाने पड़े । परन्तु जब मैं वहाँ गया तो अपने आपको सर्वथा अपरिचित और अजान जाना। और अपने चारों ओर ऊँची-ऊँची पहाड़ियाँ देखी तो मुझे आगे का मार्ग बन्द दिखाई दिया । कुछ ही काल पश्चात् पथ सर्वथा लुप्त हो गया और उस मार्ग का मुझको कोई पता न मिला। उस समय मैं सोच व चिन्ता में था कि क्या करना चाहिये। अन्ततः अपना मार्ग अन्वेषण करने के अर्थ मैंने नदी को पार करने का दृढ़ निश्चय कर लिया। मेरे पहने हुये वस्त्र बहुत हल्के और थोड़े थे और शीत अत्यधिक था। कुछ ही काल पश्चात् शीत ऐसा अधिक हुआ कि उसका सहन करना असम्भव था। क्षुधा और पिपासा ने जब मुझे अत्यन्त बाधित किया तो मैं एक हिम का टुकड़ा खाकर उसको बुझाने का विचार किया, परन्तु उससे किंचित् आराम वा संतुष्टि प्रतीत न हुई । पुनः मैं नदी में उतर उसे पार करने लगा।

कतिपय स्थानों पर नदी बहुत गम्भीर थी और कहीं पानी बहुत कम था। परन्तु एक हाथ या आधा गज से कम गहरा कहीं न था। किन्तु विस्तार अर्थात् पार में दस हाथ तक था अर्थात् कहीं से चार गज और कहीं से पाँच गज । नदी हिम के छोटे और तिरछे टुकड़ो से भरी हुई थी। उन्होंने मेरे पाँव को अति घावयुक्त कर दिया सो मेरे नग्न पाँव से रक्त बहने लगा। मेरे पाँव शीत के कारण नितान्त सन्न हो गये थे। जिस कारण मैं बड़े-बड़े घावों से भी कुछ काल तक अचेत रहा। इस स्थान पर अतिशीत के कारण मुझ पर अचेतनता सी छाने लगी। यहाँ तक मैं अचेतन अवस्था में होकर हिम पर गिरने को था जब मुझे विदित हुआ कि यदि मैं यहाँ पर इसी प्रकार गिर गया तो पुनः यहाँ से उठना मेरे लिये अत्यन्त असम्भव और कठिन होगा। एवं दौड़ धूप करके जैसे हुआ

मैं प्रवल प्रयत्न करके वहाँ से कुशल मंगल पूर्वक निकला और नदी के दूसरी ओर जा पहुँचा। वहाँ जाकर यद्यपि कुछ काल तब मेरी अवस्था ऐसी रही जो जीवित की अपेक्षा मृतवत् थी तथापि मैंने अपने शरीर के उपरिभाग को सर्वथा नँगा कर लिया और अपने समस्त वस्त्रों से जो मैंने पहने हुये थे जानु वा पाँव तक जँघा को लपेट लिया। और वहाँ पर मैं सर्वथा शक्तिहीन और घबराया हुआ आगे को हिल सकने और चल सकने में अशक्त खड़ा हो गया। इस प्रकार प्रतीक्षा में था कि कोई सहायता मिले जिससे मैं आगे को चलूँ । परन्तु इस बात की कोई आशा न थी कि वह आवेगी कहाँ से ? सहायता की आशा में था, परन्तु सर्वथा विवश था और जानता था कि कोई सहायता का स्थान दिखाई नहीं देता। अन्त को पुनः एक बार मैंने अपने चारों ओर दृष्टि की और अपने सम्मुख दो पहाड़ी पुरुषों को आते हुए देखा जो मेरे समीप आये मुझको प्रणाम करके उन्होंने अपने साथ घर जाने के लिये मुझे बुलाया और कहा,'' आओ हम तुमको वहाँ खाने को भी देवेंगे''। जब उन्होंने मेरे क्लेशों को सुना और मेरे व्रत को श्रवण किया तो कहने लगे '' हम तुम को सिद्धपत पर भी जो एक तीर्थ स्थान है , पहुँचा देवेंगे । परन्तु उनका मुझको यह सच कहना अच्छा प्रतीत नहीं हुआ। मैंने अस्वीकार किया और कहा '' महाराज, शोक ! मैं आपकी यह सब कृपा स्वीकार नहीं कर सकता क्योंकि मुझमें चलने की किंचित् शक्ति नहीं है।'' यद्यपि उन्होंने मुझको बहुत आग्रह पूर्वक बुलाया और आने के लिये अत्यधिक अनुरोध किया , तथापि मैं वहीं अपने पाँव जमाये खड़ा रहा और उनकी आज्ञा वा इच्छानुकूल मैं उनके पीछे चलने का साहस न कर सका। मैंने उनसे कह दिया कि यहाँ से हिलने का प्रयत्न करने की अपेक्षा मैं मर जाना उत्तम समझता हूँ। ऐसा कह कर मैंने उनकी बातों की ओर ध्यान करना भी बंद कर दिया अर्थात् पुनः उन्हें न सुना। उस समय मेरे मन में विचार आता था कि उत्तम होता यदि मैं लौट जाता और अपने पाठ को स्थिर रखता इतने में वह दोनों सज्जन वहाँ से चले गये और कुछ ही काल में पर्वतों में लुप्त हो गये ।

वहाँ जब मुझे शांति प्राप्त हुई तो मैं भी आगे को चला और कुछ काल वसुधारा (प्रसिद्ध तीर्थ व यात्रा स्थान) पर विश्राम करके माना ग्राम के निकटवर्ती प्रदेश में होता हुआ उसी सायं लगभग आठ बजे बद्रीनारायण जा पहुँचा। मुझे देखकर रावल जी और उनके साथी जो घबराये हुये थे, विस्मय प्रकाश पूर्वक पूछने लगे-" आज सारा दिन तुम कहाँ रहे?"तब मैंने सब वृत्तान्त (क्रमबद्ध) सुनाया उस रात्रि कुछ आहार करके जिससे मेरी शक्ति लौटती हुई जान पड़ी, मैं सो गया। दूसरे दिन प्रातः शीघ्र ही उठा और रावल जी से आगे जाने की आज्ञा माँगी। और अपनी यात्रा से लौटता हुआ रामपुर की ओर चल पड़ा। उस सांय चलता-चलता एक योगी के घर पहुँचा। वह बड़ा तपस्वी था। रात्रि उसी के घर काटी। वह पुरुष जीवित ऋषि और साधुओं में उच्च कोटि के ऋषि होने का गौरव रखता था। धार्मिक विषयों पर बहुत काल तब उसका मेरा वार्तालाप हुआ। अपने संकल्पों को पहले से ही अधिक दृढ़ करके मैं आगामी दिन प्रातः उठते ही आगे को चल दिया। कई वनों और पर्वतों से होता हुआ चिलका घाटी से उतर कर मैं अन्ततः रामपुर पहुँच गया। वहाँ पहुँच कर मैंने प्रसिद्ध रामगिरि के स्थान पर निवास किया। यह पुरुष पवित्राचार और आध्यात्मिक जीवन के कारण अतिप्रसिद्ध था। मैंने उसको विचित्र प्रकृति का पुरुष पाया। अर्थात् वह सोता नहीं था, वरन् सारी-सारी रातें उच्च स्वर से बातें करने में व्यतीत करता। वह बातें प्रकट में अपने साथ करता हुआ प्रतीत होता था। प्रायः हमने उच्च स्वर से चीख मारते हुये उसे सुना । पुनः कई बार रोते हुये और चीख मारते हुये सुना। पर वस्तुतः जब उठकर देखा तो उसके कमरे में उसके अतिरिक्त और कोई पुरुष दिखाई न दिया । मैं ऐसी वार्ता से अत्यन्त विस्मित हुआ। जब मैंने उसके चेलों और शिष्यों से पूछा तो उन विचारों ने केवल यही उत्तर दिया कि ऐसी इनकी प्रकृति ही है। पर मुझे यह कोई न बता सका कि इसका क्या रहस्य है। अन्त को स्वयं जब मैंने उस साधु से कई बार एकान्त में चर्चा की तो मुझे ज्ञात हो गया कि वह क्या बात थी। इस प्रकार मैं इस निश्चय करने के योग्य हो गया कि अभी वह जो कुछ

करता है वह पूरी –पूरी योग विद्या का फल नहीं है, प्रत्युत पूरी में अभी उसे न्यूनता है और यह वह वस्तु नहीं कि जिसकी मुझे जिज्ञासा है। यह पूरा योगी नहीं यद्यपि योग में कुछ गति रखता है।

उससे चलकर मैं काशीपुर गया। वहाँ से द्रोणसागर जा पहुँचा । वहीं मैंने सारा शरद् ऋतु काटा। हिमालय पर्वत पर पहुँचकर देह त्याग करना चाहिये, ऐसी इच्छा हुई। परन्तु मन में यह विचार आ गया कि ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् देह छोड़ना चाहिये। अतः वहाँ से मुरादाबाद होता हुआ सम्भल आ पहुँचा। वहाँ से गढ़मुक्तेश्वर से होते हुये पुनः मैं गंगा तट पर आ निकला। उस समय अन्य धार्मिक पुस्तकों के अतिरिक्त मेरे पास निम्नलिखित पुस्तकें भी थी। शिव संध्या, हठ योग प्रदीपिका, केशाराणि संगीत प्रायः मैं इन्हीं पुस्तको को यात्रा में पढ़ा करता था। उनमें से कई पुस्तकोँ का विषय नाड़ी चक्र था। पर उनमें इस विषय का ऐसा लम्बा चौड़ा विवरण था कि पुरुष पढ़ता पढ़ता थक जाता। मैं उन्हे कभी भी पूर्णतया अपनी बुद्धि में न ला सका और नहीं समझकर स्मरण कर सका । अतः मुझे विचार हुआ कि न जाने ये सत्य भी हैं वा नहीं । ऐसा संदेह होता ही गया , यद्यपि मैं अपने संशय मिटाने का यत्न करता रहा। परन्तु वह संदेह दूर न हुये और न ही उनके दूर करने का कोई अवसर प्राप्त हुआ ।

एक दिन दैव संयोग से एक शव मुझे नदी में बहता हुआ मिला। तब समुचित अवसर प्राप्त हुआ कि मैं उसकी परीक्षा करता और अपने मन में उन पुस्तकों के सम्बन्ध में जो विचार उत्पन्न हो चुके थे उनका निर्णय करता। सो उन पुस्तकों को जो मेरे पास थीं, समीप ही एक ओर रख, वस्त्रों को ऊपर उठा मैं नदी के भीतर गया और शीघ्र वहाँ जा शव को पकड़ तट पर आया । मैंने तीक्ष्ण चाकू से जैसा हो सका उसे यथायोग्य काटना प्रारम्भ किया और हृदय को उसमें से निकाल लिया और ध्यानपूर्वक देख परीक्षा की। अब पुस्तकोल्लिखित वर्णन की उससे तुलना करने लगा। ऐसे ही शिर और ग्रीवा के अंगों को काट कर सामने रखा । यह निश्चय करके कि दोनों अर्थात् पुस्तक

और शव लेश मात्रा भी परस्पर नहीं मिलते , मैंने पुस्तकों को फाड़कर उनके टुकड़े कर डाले और शव को फेंक साथ ही पुस्तकों के टुकड़ों को भी नदी में फेंक दिया। उसी समय से शनैःशनैः मैं यह परिणाम निकालता गया, कि वेदों ,उपनिषदों, पतंजलि और सांख्यशास्त्र के अतिरिक्त अन्य समस्त पुस्तकें जो विज्ञान और विद्या पर लिखी गयीं मिथ्या और अशुद्ध हैं। ऐसे ही कुछ दिन और गंगातीर पर विचरते हुये फर्रुखाबाद पहुंचा। और श्रृंगीराम पुर से होकर छावनी की पूर्व दिशा वाली सड़क से कानपुर जाने वाला था, जब संवत् 1912 विक्रम समाप्त हुआ।

1913 वि0 अगले पाँच मास में कानपुर वा प्रयाग के मधयवर्ती अनेक प्रसिद्ध स्थान मैंने देखे। भाद्रपद के प्रारम्भ में मिर्जापुर पहुँचा। वहाँ एक मास से अधिक विंध्याचल अशोलजी के मन्दिर में निवास किया। असूज के आरम्भ में काशी पहुँचा। वहाँ जाके मैं उस गुफा में ठहरा जो वरणा और गंगा के संगम पर है। और जो उस समय भवानन्द सरस्वती के अधिकार में थी। वहाँ पर कई शास्त्रियों अर्थात् काकाराम राजाराम आदि से मेरा परिचय हुआ परन्तु वहाँ केवल 12 दिन ही रहा ।

तत्पश्चात् जिस वस्तु की खोज में था उसके अर्थ आगे को चल दिया । और असूज सुदि 2 सं0 1913 को दुर्गाकुण्ड के मन्दिर पर जो चण्डालगढ़ में है, पहुँचा। वहाँ दस दिन व्यतीत किये यहाँ मैंने चावल खाने सर्वथा छोड़ दिये और केवल दूध पर अपना निर्वाह करके दिन रात योग विद्या के अध्ययन और अभ्यास में तत्पर रहा। दौर्भाग्यवश वहाँ मुझे एक बड़ा दोष लग गया,अर्थात् भाँग पीने का स्वभाव हो गया। सो कई बार उसके प्रभाव से मैं सर्वथा वेसुधा हो जाया करता था। एक दिन मन्दिर से निकल कर चण्डालगढ़ के निकटस्थ जो एक ग्राम आता था तो एक पुराना साथी मिला। ग्राम के दूसरी ओर कुछ ही दूर एक शिवालय था। वहाँ जाकर मैंने रात काटी। रात्रि के समय भाँग से उत्पन्न हुई मादकता के कारण जब मैं अचेत सोता था तो मैंने एक स्वप्न देखा। वह ऐसे था मुझे विचार हुआ कि मैंने महादेव और उनकी स्त्री

पार्वती को देखा। वे परस्पर वार्तालाप कर रहे थे और उनकी बातों का पात्र मैं था, अर्थात् मेरे ही सम्बन्ध में वे कह रहे थे। पार्वती महादेव जी से कहती थी '' उत्तम हो यदि दयानन्द सरस्वती का विवाह हो जावे'' परन्तु देवता उससे भेद प्रकट कर रहे थे और उनका संकेत भाँग की ओर था। मैं जागा और स्वप्न पर विचार करने लगा। तब मुझे बड़ा दु:ख और क्लेश हुआ। उस समय ध ारासार वर्षा हो रही थी। मैंने उस बरामदे में जो मन्दिर के मुख्य द्वार के सन्मुख थे विश्राम किया। वहाँ नन्दी वृष-देवता की एक विशाल मूर्त्ति खड़ी थी। अपने वस्त्र पुस्तकादि उसकी पृष्ठ पर रख कर मैं उसके पीछे बैठ गया और निज विचार में निमग्न हुआ। सहसा नन्दी मूर्ति के भीतर दृष्टिपात करने पर मुझे विदित हुआ कि एक मनुष्य उसमें छिपा हुआ है। मैंने अपना हाथ उसकी ओर फैलाया। इससे वह अति भयभीत हुआ, क्योंकि मैंने देखा कि उसने तत्काल छलाँग मारी और छलाँग मारते ही वेग से ग्राम की ओर भागा। तब उसके जाने पर मैं उसही मूर्ति के भीतर बैठ गया और अवशिष्ट रात्रि भर वहाँ सोता रहा। प्रात:काल एक वृद्धा वहाँ आई। उसने वृष देवता की पूजा की, जिस अवस्था में कि मैं भी उसके अन्दर ही बैठा हुआ था। कुछ देर पीछे वह गुड़ और दही लेकर लौटी। मेरी पूजा करके और भ्रान्ति से मुझे ही देवता समझकर उसने कहा '' आप इसे ग्रहण कीजिये और इसमें से कुछ खाइये। '' मैंने क्षुधार्त होने के कारण वह सब खा लिया। दही क्योंकि बहुत खट्टा था, अत: भँग की मादकता के दूर करने में एक अच्छा निदान हो गया। उससे मादकता जाती रही और मुझे बहुत आराम प्रतीत हुआ।

चैत्र 1914 वहाँ से आगे चला और वह मार्ग पकड़ा कि जिस ओर पर्वत थे और जहाँ से नर्मदा निकलती है।, अर्थात् नर्मदा के स्रोत की ओर यात्रा आरम्भ की। मैंने कभी एक बार भी किसी से मार्ग नहीं पूछा प्रत्युत दक्षिण की ओर यात्रा करता हुआ चला गया। शीघ्र ही मैं एक ऐसे उजाड़,निर्जन स्थान में पहुँच गया जहाँ चारों ओर बहुत घने वन और जंगल थे। वहाँ जंगल में अनियमित दूरी पर बिना क्रम झाड़ियों के मध्य में कई स्थानों पर मलिन और

उजाड़ झोंपड़ियां थी। कहीं कहीं पृथक्-पृथक् ठीक झोंपड़ियाँ भी दृष्टिगोचर होती थी। उन झोंपड़ियों में से एक पर मैंने किंचित् दुग्धपान किया और पुनः आगे की ओर चल दिया। परन्तु इसके आगे लगभग पौन कोश चलकर मैं पुनः एक ऐसे ही स्थान पर पहुँचा जहाँ कोई प्रसिद्ध मार्ग आदि दिखाई न देता था। अब मेरे लिये यही उचित प्रतीत होता था कि उन छोटे-छोटे मार्गों में से (जिन्हें मैं न जानता था कि कहाँ जाते हैं।) कोई एक चुनू और उस ओर चल दूँ । सुतरां मैं शीघ्र ही एक निर्जन वन से प्रविष्ट हुआ। उस जंगल में बेरियों के बहुत वृक्ष थे। परन्तु घास इतना घना और लम्बा था कि मार्ग सर्वथा दृष्टिगोचर न होता था। वहाँ मेरा सामना एक बड़े काले रीछ से हुआ। वह पशु बड़े वेग और उच्च स्वर से चींखा। चिंघाड़ कर अपनी पिछली टाँगों पर खड़ा हो मुझे खाने के निमित्त उसने अपना मुख खोला। कुछ काल तक मैं निष्क्रिय स्थम्वत् खड़ा रहा। पश्चात् शनैःशनैः मैंने अपने सोटे को उसकी ओर उठाया। उससे भयभीत हो वह उलटे पांव लौट गया। उसकी चिंघाड़ वा गर्ज ऐसी बलपूर्ण थी कि ग्राम वाले जो मुझे अभी मिले थे, दूर से उसका शब्द सुनकर लठ ले शिकारी कुत्तों सहित मेरी रक्षार्थ वहाँ आये। उन्होंने मुझे यह समझाने का परिश्रम किया कि मैं उनके साथ चलूं। वे बोले '' इस जंगल में यदि तुम कुछ भी आगे बढ़ोगे तो तुम्हें संकटों का सामना करना पड़ेगा। पर्वत या वन में बहुत से भयानक क्रूर और हिंसक जंगली पशु अर्थात् रीक्ष, हाथी, शेर आदि तुमको मिलेंगे। '' मैंने उनसे निवेदन किया कि आप मेरे कुशल मंगल का कुछ भय न करें क्योंकि मैं कुशल मंगल और रक्षित हूँ। मेरे मन में तो यही सोच थी कि किसी प्रकार नर्मदा का स्रोत देखूं। अतः समस्त भय और कष्ट मुझे अपने संकल्प से न रोक सकते थे। जब उन्होंने देखा कि उनकी भयानक बातें मेरे लिये कोई भय उत्पन्न नहीं करतीं और मैं अपने संकल्प में पक्का हूँ तो उन्होंने मुझे एक दण्ड दिया जो मेरे सोटे से बड़ा था और जिससे मैं अपनी रक्षा करूं। परन्तु मैने उस दण्ड को तुरन्त अपने हाथ से फेंक दिया।

उस दिन जब तक कि संसार में चारों ओर अन्धकार न छाया मैं बराबर

यात्रा करता हुआ चला गया। कई घण्टों तक मानव वस्ती का मुझे कोई चिह्न न मिला। दूर दूर तक कोई ग्राम दिखाई न दिया। कोई झौपड़ी भी तो दृष्टिगोचर न होती थी और नही कोई मनुष्य जाति मेरे आँखों के सामने आई। पर वह वस्तुएँ जो प्रायः मेरे मार्ग में आईं , वृक्ष थे। उनमें से अनेक टूटे पड़े थे कि जिनकी जड़ों को मस्त हस्तियों ने तोड़ और उखाड़ कर फेंक दिया था। इससे कुछ दूर आगे मुझे एक विशाल विकट वन दिखाई दिया। उसमें प्रवेश करना कठिन था अर्थात् बेर आदि कांटे वाले वृक्ष इतने घने लगे हुये थे कि उनके भीतर से निकल कर वन में पहुँचना अति दुस्तर प्रत्युत असम्भव प्रतीत होता था। प्रथम तो मुझे उसके भीतर से निकलना असम्भव दिखाई दिया, परन्तु पीछे पेट के बल और जानू के सहारे मैं शनैः शनैः सर्पवत् उन वृक्षों में से निकला। और इस प्रकार उस बाधा और कठिनाई पर विजय प्राप्त की। इस दिग्विजय के प्राप्त करने में मुझ को अपने शरीर के मांस को भी भेंट करना पड़ा। मैं इसमें से घायल और अधमरा होकर निकला। उस समय सर्वत्र अन्धकार छाया हुआ था। तम के अतिरिक्त कुछ दृष्टिगोचर न होता था। यद्यपि मार्ग रुका हुआ था और दिखाई न देता था तो भी मैं आगे बढ़ने के विचार को तोड़ न सकता था। मैं इस आशा में था कि कोई मार्ग निकल ही आवेगा। अतएव निरन्तर आगे को चलता गया और बढ़ता रहा। अन्त को मैं एक ऐसे भयानक स्थान में पहुँचा कि जहाँ चारों ओर उच्च शैल और पर्वत थे कि जिन पर घनी औषधियाँ और वनस्पतियाँ उगी हुई थी। पर इतना अवश्य था कि मनुष्यवास के वहाँ कुछ-कुछ चिह्न और संकेत पाये जाते थे। अस्तु। शीघ्र ही मुझे कई झौपड़ियाँ और कुटियायें दिखाई पड़ीं। उनके चारों ओर गोबर के ढ़ेर लगे हुये थे। निकट ही स्वच्छ जल की एक छोटी सी नदी थी। उसके तीर पर बहुत सी बकरियाँ चर रही थी। झोंपड़ियों और टूटे-फूटे घरों के द्वारों और छिद्रों में से टिमटिमाता हुआ प्रकाश दिखाई देता था जो जाते हुये पथिक को स्वागत और बधाई के शब्द सुनाता हुआ प्रतीत होता था। मैंने वहाँ एक विशाल वृक्ष के नीचे जो एक झोपड़ी के ऊपर फैला हुआ था रात्रि व्यतीत

की। प्रातः उठकर मैं अपने क्षत पांव हाथ और दण्ड को नदी जल से धोकर संध्या वा प्रार्थना के लिये बैठने को ही था कि किसी जंगली पशु की गर्ज मेरे कर्ण गोचर हुई। वह ध्वनि 'टमटम का उच्च स्वर था। कुछ काल पश्चात् मैंने एक बड़ी सवारी या जन समूह को आते हुये देखा। उसमें बहुत से स्त्री पुरुष और बालक थे। उनके पीछे बहुत सी गौवें और बकरियाँ थी। वे एक झोपड़ी या घर से निकले। अनुमान है कि वे किसी धार्मिक त्यौहार की रस्में पूरी करने के लिये जो रात्रि को हुआ, आये थे। जब उन्होंने मेरी ओर देखा और मुझे उस स्थान में एक अजान पुरुष जाना तो बहुत से मेरे चारों ओर एकत्र हुये। अन्ततः एक वृद्ध पुरुष ने आगे बढ़कर मुझ से पूछा तुम कहाँ से आये हो ? मैंने उन सबसे कहा कि मैं काशी से आया हूँ और अब नर्मदा नदी के स्रोत की ओर यात्रा के लिये जा रहा हूँ। इतना पूछ कर वे सब मुझे अपनी उपासना करने में निमग्न छोड़ कर चले गये। उनके जाने के आधा घण्टा पश्चात् उनका एक अध्यक्ष दो पर्वतीय पुरुषों सहित मेरे पास आया और एक दिशा में बैठ गया। वह वस्तुतः उन सब की ओर से प्रतिनिधि बन कर मुझे अपनी झोंपडियों में बुलाने को आया था परन्तु मैंने पूर्ववत् अब भी उनका निमन्त्रण अस्वीकार किया क्योंकि वे सब मूर्तिपूजक थे। तब उसने अपने साथ वालों को मेरे समीप अग्नि प्रज्वलित करने का आदेश किया। और दो पुरुषों को स्थापित किया कि रात्रि भर मेरी रक्षा करते हुये जागते रहें । जब उसने मुझसे मेरे भोजन के सम्बन्ध में पूछा और मैंने उसे बताया कि मैं केवल दूध पीकर निर्वाह करता हूँ। तो उस दयावान् अध्यक्ष व नेता ने मुझ से मेरा तूंबा मांगा। उसे लेकर वह अपनी कुटी को गया और वहाँ से उसे दूध से भर कर मेरे पास भेज दिया मैंने उस रात्रि उसमें से थोड़ा सा दूध पिया। वह फिर मुझे उन दोनों पहरा देने वालों के ध्यान में छोड़ कर लौट गया। उस रात्रि मैं घोर निद्रा में सोया और सूर्योदय तक सोया रहा। तत्पश्चात् अपने संध्या आदि से अवकाश प्राप्त करके मैं उठा और यात्रा के लिये चला ।

दयानन्द सरस्वती